रामानन्द दर्शन में स्त्री विमर्श

श्रीमती अंजना शर्मा
निदेशक
पदमश्री नारायणदास रामानन्द दर्शन शोध संस्थान, जयपुर

श्रीमद्भगवद्गीता में यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि ज्ञान से पवित्र इस धरती पर अन्य कोई सम्पदा नहीं है :-

''न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।''

उस ज्ञान की चरितार्थता आचरण में है। वह ज्ञान भी तीन प्रकार का होता है। जब हम तर्क के द्वारा किसी निष्कर्ष पर पहुंचते है तो वह ज्ञान 'दर्शन' कहलाता है। इसे कसौटी पर कसे तो यह स्पष्ट होता है कि आचार्य शंकर से लेकर भास्कर, रामानुज, रामानन्द, माध्व, निम्बार्क, श्रीपति, वल्लभ, विज्ञानभिक्षु तथा बलदेव आदि आचार्यों ने अपनी-अपनी दृष्टि से तर्क के आधार पर वेदान्त विषयक चिन्तन करके अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, शुद्धाद्वैत आदि रूप से ब्रह्म, जीव एवं जगत् विषयक अलग-अलग दृष्टिकोण का उपस्थापन किया था। इनमे विशिष्टाद्वैत सम्प्रदाय के अन्तर्गत जिन आचार्यों का श्रद्धापूर्वक नाम स्मरण किया जाता है उनमें रामानुजाचार्य एवं रामानन्दाचार्य प्रमुख है।

स्वामी रामानन्द के प्रधान जिन शिष्यों के नाम गिनाये हैं, वे सभी आज भी हमारे लिये श्रद्धा और भक्ति के केन्द्र है।

अनन्तानन्द कबीर सुखा पद्मावती नरहरि
पीपा भावानन्द रैदास धन्ना सैन सुरसरि की घरहरि,
औरों शिष्य प्रशिष्य एक ते एक उजागर
विश्व मंगलाधार सर्वानन्द दसधा आगर।

बहुत काल वपु धारी के प्रणत जनन को पार दियो
रामानन्द रघुनाथ ज्यों दुतिय सेतु जगतरण किया॥

भक्तमाल के इस छप्पय में यह बात गौर करने की है कि नाभादास ने यहां रामानन्द के जिन बारह शिष्यों का नाम गिनाया है उनमें पद्मावती और सुरसरि की घरहरि अर्थात् सुरसुरानंदाचार्य की पत्नी सुरसरि का भी नाम है।

स्वामी रामानन्द ने अपनी रामभक्तिगंगा के प्रवाह में नारियों को भी सम्मिलित किया। ऐसा उदाहरण हमारे इतिहास में दूसरा नहीं है। रामानन्द ने नारी को पवित्र व सृष्टि की जननी कहा है। 'मातृदेवो भव' इस वेदवाक्य के स्वामी रामानन्द पूर्णत: प्रतिपालक थे तभी तो उन्होंने नारियों को वन्दनीय व आदरणीय कहा है। ''वैष्णवमताब्जभास्कर'' नामक अपने वैष्णवसिद्धान्तप्रतिपादक ग्रन्थ में स्वामी रामानन्द ने स्वयं कहा है कि –

सर्वे प्रपत्तेरधिकारिणो मता: शक्ता: विशक्ता: पदयोर्जगत्प्रभो।
नापेक्ष्यते तत्र कुलं बलं च न चापि कालो न हि शुद्धतापि वा।

स्वामी रामानन्द ने इस श्लोक में भगवान् की शरण में जाने वाले प्रपन्न जीव के कुल, बल, काल और शुद्धता को अत्यावश्यक नहीं माना। स्वामी रामानन्द का यह चिंतन भगवान् श्रीराम के आचरण से प्रकट होता है। भगवान् श्रीराम ने अपने अवतार काल में कौल, भील, किरात, निषाद और वानर-भालुओं को अपने गले लगाया था और उन्हें अपने ज्ञान, कर्म और भक्तियोग से अन्यतम शरणागति योग भी प्रदान किया था।

भगवान् श्रीरामानन्दाचार्य के सामने एक ओर स्त्रीशूद्रौ नाधीयाताम्, न शूद्राय मतिं दद्यात् जैसे कठोर शास्त्रीय अनुशासन थे तो दूसरी ओर स्त्री-शूद्रादि को भक्ति की मुख्यधारा से जोड़ने का मंगल संकल्प। लोकमंगल हेतु व्यापक दृष्टिकोण तथा शास्त्रों का कालानुरूप प्रयोग आचार्य को महनीय बनाते हैं। सम्पूर्ण जगत् का स्वस्तिवाचन करनेवाला आचार्य ही वस्तुत: जगद्गुरु पद का यथार्थतया भाजन हो सकता है। महत्तम आचार्य वह होता है जो विविध विरोधों एवं विषमताओं के अन्तर्द्वन्द्व में से वैदिक संस्कार आचारों एवं मर्यादाओं को यथावत् अक्षुण्ण रखते हुए समन्वयपूर्वक एक सर्वमान्य निरापद तथा सरल मार्ग सबके समच प्रस्तुत करता है। जीवों की दयनीय दशा देख करुणा से उद्वेलित होकर वे शास्त्रों की उत्सर्गापवादन्याय से पुन: समीक्षा कर, शरीरोपासना से आत्मोपासना तक पहुँचाने का सुदृढ़ मार्ग तलाशते हैं। आचार्यचरण ने भक्तिविमुख शूद्र एवं नारियों के लिये भक्ति का द्वार उद्घाटित कर आभ्यन्तर कुण्ठा से सदा के लिये मुक्त किया। उन्हें लगा कि किसी ने उन्हें इहलोक से उठाकर देवलोक में प्रतिष्ठापित कर दिया हो। संभव था लोकधर्म की रीति से पापनिवृत्ति-सत्त्वशुद्धि-ज्ञानोत्पत्ति आदि के क्रम से इस परमलाभ तक उन्हें पहुँचाने में अनेक जन्म लग जाते। वैष्णवाचार्यों के अनुसार यथेष्टविनियोगार्हरूप शेषत्व जो आत्मवृत्ति धर्म है, जिसमें अनन्यार्हत्व, अनन्यभोग्यत्व, अनन्यशेषत्व की भावना अनुस्यूत हैं, इसी आत्मगतधर्म को दृष्टिगत रखकर स्वामी श्रीरामानन्दाचार्यजी ने सिद्धान्त का उदार प्रयोग किया। जिसके फलस्वरूप एक ओर कबीर, रैदास, धन्ना, सेन आदि को परमलाभ हुआ तो दूसरी ओर पद्मावती, सुरसरि प्रभृति स्त्रियों को दुर्लभ भगवद्भाव की प्राप्ति हुई। प्रयोग के बिना अचरितार्थ हो रहे शास्त्रों के महार्थों ने जो उदार प्रयोक्ता आचार्य की, विशद निक्षेप की

अपेक्षा कर रहे थे अपवाद शास्त्र के समान सामान्य शास्त्रों पर अपना आधिपत्य जमा लिया। अब तो वैदिक कर्मकाण्डी ब्राह्मण अपनी भक्तिमती पत्नियों के भाग्य की सराहना करने लगे। अपने भक्तिरहित जीवन को धिक्कारने लगे, जैसा कि भागवत में वर्णन आया है –

धिग् जन्म नस्त्रिवृद् विद्यां धिर्ग् व्रतं धिग् बहुज्ञताम्।
धिक् कुलं धिक् क्रियादाक्ष्यं विमुखा ये त्वाधोक्षजे॥
अहो पश्यत नारीणामपि कृष्णे जगद्गुरौ।
दुरन्तभावं योऽविध्यन्मृत्युपाशान् गृहाभिधान्॥

नासां द्विजातिसंस्कारो न निवासो गुरावपि।
न तपो नात्ममीमांसा न शौचं न शुभाः क्रिया॥
अथापि ह्युत्तमश्लोके कृष्णे योगेश्वरेश्वरे।
भक्तिर्दृढ़ा न चास्माकं संस्कारादिमतामपि॥

अन्ततः आत्मधर्म को प्रधानता देते हुए आचार्यचरण ने स्त्रियों को केवल श्रीरामभक्ति का अधिकार ही नहीं अपितु अपना शिष्य प्रदान कर धार्मिक जगत् में प्रथम प्रयोगात्मक निर्देशन प्रस्तुत किया। उनके जीवन मे भक्ति की ऐसी दिव्य अवस्था प्रकट की जिसने उन्हें महाभागवत की कोटि में प्रतिपादित कर दिया। वह अधिकार जो स्त्री शरीर प्राप्ति के अनन्तर कदाचित् पुरुष शरीर की प्राप्ति के बाद भी शायद ही मिलता। शास्त्रगर्हित इसी स्त्री शरीर से भक्ति द्वारा भगवच्चरणोपासना का वह अधिकार श्रीस्वामीजी ने प्रदान किया। आचार्यचरण ने अपने पति की सेवा को परमधर्म मानने वाली को उस परमपति के साथ परिचय ही नहीं वरन् नित्य समाधि का भान कराया। आत्मवृद्धि से उपासना की रीति बतायी। जिस परमपति को श्रुति ने 'पतिं पतीनां परमं परस्तात्' कहा तो भगवान् बादरायण ने 'पत्यादिशब्देभ्यः' सूत्र के द्वारा निर्दिष्ट किया। वस्तुतः 'पाति सर्वतो रक्षतीति पतिः' इस व्युत्पत्ति के अनुसार जो स्वयं काल का ग्रास है अर्थात् जो इस अनादि अविद्या कृत जन्म-मरण के प्रवाह में बह जाये, वह कैसा पति ? वैसे पति तो एक ही हैं, निखिलजगत्पति श्रीरघुपति।

यहाँ ध्यातव्य है कि वैदिक विधि से पाणिग्रहण संस्कारपूर्वक स्वीकृत पति को भी तत्प्रतिरूप मानकर सेवा करने में त्रिवर्गसाधन शास्त्रीय मर्यादा का कोई विरोध नहीं है। वैदिक सनातन धर्म में विलक्षण सौविध्य है कि हमें ईश्वर तक पहुँचन के लिये उसकी अनेक प्रतिमूर्ति माता-पिता-गुरु-पति-गो-ब्राह्मण-तुलसी-गंगा आदि के रूप में सुलभ है। ईश्वरीय भावनापूर्वक सेवा करते हुए धीरे-धीरे अपने भाव विकास के द्वारा धार्मिक प्रकर्ष

से चित्तशुद्धि के क्रम से उस महनीय भगवद्रति को पाया जा सकता है जो भगवच्चरण तक पहुँचा कर सेवा का अधिकार प्रदान करती है।

भगवद्भक्ति आत्मधर्म है, जिसके अनुष्ठान में यथासंभव शरीरप्रयुक्त पतिपत्न्यादि के धर्म के साथ समन्वय करके चलना उचित है। मन्दोदरी भी उत्पथगामी पति रावण को प्रभु की शरण में जाने का बारम्बार आग्रह करती थी। विंध्यावली ने भी अपने पति दैत्येन्द्र बलि के निग्रह को भगवदनुग्रह मानकर उचित ठहराती हुई उससे भगवच्चरणों में सर्वात्म समर्पण का आग्रह किया था। शबरीजी को मन्त्रदानपूर्वक आश्रम में स्थान देने पर महात्मा मतंग को तात्कालिक ऋषियों के कोप का भाजन बनाना पड़ा था। जिन शबरीजी की भक्ति के लिये भक्तमाल में लिखा है कि – 'केऊ कोटि विप्रताई यापै वारि डारियै'।

जब अत्यन्त विरोध या बलपूर्वक दमन की स्थिति हो तो लोक धर्म की उपेक्षा कर भागवतधर्म के आश्रय को ही शास्त्रों ने उचित माना है धर्मं भजस्व सततं त्यज लोकधर्मान् (भागवतमाहात्म्य 4-80) के न्याय से सांसारिक सम्बन्धों की अपेक्षा भगवत्सम्बन्ध को महत्व देना योग्य है। आत्मनिष्ठों द्वारा भगवद्भजन में विघ्न करने वाले पापी पति का त्याग देखा जाता है, तभी तो तुलसीदासजी ने 'जाके प्रिय न राम वैदेही' वाले पद मे 'बलि गुरु तज्यो कंत ब्रज-वनितन्हिं भे मुद मंगलकारी' कहकर उनके परित्याग के औचित्य में यह युक्ति दी है कि जिस अंजन को लगाने से आँख ही फूट जाय, उस अंजन का क्या फायदा? लौकिक पति आदि की सेवा तो धर्म द्वारा भगवत्प्रीति पर्यवसायी होनी चाहिये, जो अंग अंगी का उपकारक न हो प्रत्युत प्रतिबन्धक हो तो उसका अंगत्व ही नष्ट माना जाता है, तभी तो मीराजी वैराग्यप्रधान रामानन्द सम्प्रदाय की उपासना पद्धति की ओर संकेत करती हुई कहती है कि –

बाला मैं बैरागन हूंगी
जिन वेशां मेरा साहेब रीझे सो ही भेष धरूँगी
उनको साधारण स्त्री के समान विधवा होना अभीष्ट नहीं, उन्हें अखण्ड सौभाग्य चाहिये।

ऐसे पति को क्या वरूँ जो जन्मे अरूँ मरि जाय,
पति वरौ गोविन्द को जासों चुडलो अमर हो जाय॥

निश्चय ही मीराजी की यह भक्ति चेतना उन्हें श्रीरामानन्दाचार्य के शिष्य रैदासजी से प्राप्त हुई थी, जहाँ श्रीराम-कृष्ण की अभेदभाव से उपासना की जाती है। रामानन्दी रसिक महात्मा श्रीनाभास्वामी ने उनकी भक्ति के उत्कर्ष का इन शब्दों में वर्णन किया है –

लोक लाज कुल शृंखला तजि मीरा गिरिधर भजी
सहवा गोपिका प्रेम प्रगट कलिजुगहि दिखायौ
निर अंकुश अति निडर रसिक जस रसना गायौ
दुष्टनि दोष विचार मृत्यु को उद्यम कीयौ
बारन बाँकौ भ्यो गरल अमृत ज्यौं पीयौ
भक्ति निसान बजाय कै काहू ते नाहिन लजी
लोक लाज कुल शृंखला तजि मीरा गिरिधर भजी॥

मीराजी की ऐसी उपासना को सुदृढ़ शास्त्रीय आधार तथा अनुमति देते हुए विभीषण को दृष्टान्त बनाकर रामायण के भूषणटीकाकार ने लिखा है–एवं तत्त्वज्ञानसम्पन्नस्य विशेषसामान्यधर्मप्राबल्यदौर्बल्यविवेकेन सामान्यधर्मपरित्यागो विशेषधर्मपरिग्रहश्चोपपद्यते। ज्येष्ठभ्रात्रनुवर्तनं हि त्रैवर्गिकफलसाधनतया ज्येष्ठानुवर्तनद्वारा परमात्माराधने पर्यवसायस्य वक्तव्यत्वात् मोक्षपर्यवसानेऽपि परमात्मोपासनाङ्गत्वाच्च सामान्य धर्मः। रामनुवर्तनं तु साक्षात्परमात्मसमाराधनत्वात् यज्ञादिधर्मसाध्यत्वेन प्रधानत्वाच्च विशेषधर्मः। उभयोश्चाप्यविरोधे सत्युभयमप्यनुवर्तनीयम्। विरोधे तु सामान्धर्मं परित्यज्य विशेषधर्मोऽनुवर्तनीयः'।

सामान्य–विशेष धर्मों के अविरोधेन अनुवर्तन के उदाहरण श्रीरामानन्दस्वामी के शिष्य पीपाजी एवं सीता सहचरी जी हैं, दम्पती को सन्त सेवा का आदेश मिला। द्वारका में भगवद्दर्शन निवासपूर्वक भगवदाग्रह पर वे यहाँ पधारे। श्रीधरजी की भक्ता पत्नी की सन्तसेवा निष्ठा को देखकर इनकी सन्तसेवा की भावना प्रबल हुई। लोगों के बीच पीपाजी तबला बजाते और सीता सहचरी नाचती थी, इस प्रकार संगृहीत धन से सन्त सेवा करते थे। भक्तमाल के अनुसार सीता सहचरी एक बार शरीर बेचकर सन्तसेवा करने का उद्यत हुई थी।

आचार्यचरण के इस उदार प्रयोग से भक्तिपूर्वक अपने जीवन को धन्य करने वाली नारी भक्ताओं की एक सुदीर्घ परम्परा प्रवृत्त हुई। इस आन्दोलन का समाज में तत्कालीन विविध भक्तिपरम्पराओं पर व्यापक प्रभाव पड़ा, जिसमें करमा बाई, करमैती बाई, जना बाई, रत्नावली, लालमती, गोपाली, रन्ती बाई, सक्खू बाई, सिलपिल्ले बाई आदि का भक्तिपूर्ण चरित नामग्रहणपूर्व भक्तमाल में उपलब्ध है। यहाँ तक कि एक वारमुखी की कथा भी है, जिसके भक्तिभाव पर रीझे मन्दिर के ठाकुरजी ने मस्तक झुकाकर उसके हाथ से मुकुट धारण किया था, वह भी उसकी अपवित्रावस्था में। निश्चय ही प्रभु ने उस भक्ता वारमुखी का मान बढ़ाकर अपने इस वचन को चरितार्थ किया –

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग् व्यवसितो हि सः॥